शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 August 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

भगवद्गीता में दर्शन का स्वरूप

पुरुषोत्तम कुमार सिंह (शोधार्थी)
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
विनोबा भावे विश्वविद्यालय
हजारीबाग, बिहार, भारत

शोध संक्षेप

दर्शन शब्द दृश् धातु से बना है जिसका अर्थ है'देखना' अथवा 'विचार'। अब प्रश्न उठता है किसे देखना किसी मनुष्य को, पहाड़ को, पठार को, इस जगत के विभिन्न वस्तुओं को, किसी दर्शनीय धार्मिक स्थल को सर्वव्यापी आकाश को या आसपास घट रही विभिन्न घटनाओं को देखना ? तो इसका उत्तर है नहीं, इन सबको देखना दर्शन नहीं है। तब वास्तव में दर्शन क्या है ?

अपने जीवन के उद्देश्यों को देखना है दर्शन।

अपने इस मानव जीवन के कल्याण पर विचार करना है दर्शन ।

मनुष्य शरीर का उद्धार कैसे हो ? पर विचार करना है दर्शन।

स्वयं को जान लेना है दर्शन।

सत्य की पहचान करना है दर्शन ।

दुनिया की वास्तविकता की पहचान करना है दर्शन ।

'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या पर चिंतन करना है दर्शन।

यह जगत विभिन्न प्रकार के जीव-जंतुओं से परिपूर्ण है। इसमें84 लाख योनी हैं। प्रत्येक प्राणियों में परमात्मांश का वास है, जिसे जीवात्मा कहा गया है। जीवात्मा अपना उद्धार करने के लिए उस सर्वव्यापी, निराकार, त्रिगुणातीत, परमात्मा में मिलना चाहता है। इसके लिए प्रत्येक आत्मा मानव शरीर को प्राप्त करना चाहता है, क्योंकि मानव के पास अपनी बुद्धि और विवेक होता है। इसलिए मानव शरीर को मोक्षद्वार भी कहा गया है। एक आत्मा अनेक योनियों में भटकती रहती है। उसकी काफी तपस्या और कामनाओं के बाद उसे अपने उद्धार के लिए (मोक्ष प्राप्ति हेतु) मानव शरीर मिलता है। परन्तु यह शरीर मिलते ही वह आत्मधारी मनुष्य अपने जीवन के मुख्योद्देश्य को भूलकर मोह-माया के बंधन में बंधते चला जाता है और अपने मानवजीवन का कल्याण नहीं कर पाता है।

दर्शन का परम लक्ष्य यही है कि मनुष्य को उसकी वास्तविकता से पहचान करवाना कि यह मनुष्य शरीर उसे क्यों मिला है ? तुम क्या करने इस लोक में आये हो और क्या कर रहे हो ?

मुख्य शब्द : दर्शन, सर्वव्यापी, जीवात्मा, परमात्मा, आत्मधारी, माया, मोक्ष, देह देसी, विष्णु, माया, अनिर्वचनीय, भावरूप, त्रिगुणात्मक, द्वंदसहनम्, सम्मोहितम् आदि।

भूमिका

आत्मा किसी शरीर या जीव के अंदर होता है। इसलिए जीवात्मा कहा जाता है, क्योंकि आत्मा से ही शरीर में चेतना है अर्थात् जीवन है। इसलिए जब आत्मा शरीर के अंदर प्रवेश करता है तो अचेतन शरीर को चेतनायुक्त बनाती है, जिस कारण वह जीवात्मा कहलाता है और शरीर से बाहर निकलते ही वह

आत्मा कहलाता है। आत्मा चैतन्य है जिसका कार्य है स्वयं तो जीवित रहना और चेतना प्रदान करना और उस चेतना के द्वारा शरीर चेतनायुक्त होता है। अपने लक्ष्य को वह आत्मा शरीर के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता है।

हमें पुराणों में 84 लाख योनियों का प्रमाण मिलता है। अलग-अलग योनियों में आत्मा का आना-जाना लगा रहता है। जब तक वह अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता तब तक इन्हीं योनियों में वह भटकता रहता है।

आत्मा का लक्ष्य है 'मोक्ष' अर्थात 'मुक्ति।' मोक्ष का अर्थ अलग-अलग दर्शन अपने अनुसार अलग-अलग बताते हैं। किसी के अनुसार मोक्षप्राप्ति का अर्थ 'आनंद' है, तो किसी के अनुसार जन्म मरण की प्रक्रिया से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। किंतु यदि देखा जाए तो सभी का लक्ष्य सुख आनंद की प्राप्ति ही है। आत्मा एक योनि से दूसरे योनि में आता-जाता रहता है, भटकता रहता है। जिस प्रकार मनुष्य एक वस्त्र को त्याग कर दूसरे वस्त्र को धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा भी एक शरीर को त्याग कर दूसरे नये शरीर को धारण करता है। परन्तु एक से दूसरे योनि में जाने के लिए शरीर के रूप में जन्म लेना पड़ता है फिर मारना पड़ता है।

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देहि॥ 2.22॥ ,

जो अत्यंत कष्टकारी होता है। बार-बार आत्मा को यह कष्ट सहन करना पड़ता है और कष्ट कौन चाहता है ? इसलिए आत्मा इस जन्म-मरण की प्रक्रिया से मुक्त होना चाहता है अर्थात जन्म मरण की प्रक्रिया से मुक्त होना ही मोक्ष की प्राप्ति है। जो जन्म लेता है उसे मारना पड़ता है किंतु आत्मा तो अमर है। आत्मा की अमरता के विषय में श्री कृष्ण ने भागवद्गीता के अध्याय 2 में विस्तार पूर्वक वर्णन किया है

न जायते म्रियते वा कदाचि
न्नायं भूत्वा भविता वा न भूयरू द्य
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।2/20

आत्मा परमात्मा का अंश है। यह आत्मा शांति चाहता है। उसे शांति परमात्मा में ही मिलेगी किंतु वह जैसे ही शरीर में आता है वह मोह माया से ग्रसित हो जाता है।

मानव शरीर एक मोक्षद्वार

समस्त जगत् में 84 लाख योनियां हैं। उनमें से मोक्ष का उत्तम साधन मानव देह है। जिसे सभी आत्माएं प्राप्त करना चाहत हैं, क्योंकि मनुष्य के पास काम करने का अधिकार है, सोचने-समझने की शक्ति होती है। मनुष्य देह के अलावे जो योनियां हैं उसमें जब आत्मा होती है तो वह केवल यही कामना करता रहता है कि मुझे कब मानव देह मिलेगा ?

मैं फिर उस परमात्मा को प्राप्त करने का प्रयास करूंगा। मनुष्य शरीर के प्राप्त करने से पहले वह आत्मा परमात्मा के सामने कितना अनुनय विनय करता है, कितना रोता है, बिलखता है और कहता है कि हे

प्रभु बस एक बार, बस एक बार मुझे मौका दो, इस बार मैं मानव देह व्यर्थ नहीं जाने दूंगा। फिर भगवान् दया करके उसे मानव देह देने की इच्छा बना लेते हैं। जब वह आत्मा गर्भ में प्रवेश करता है तब भी वह सिर्फ यही प्रार्थना करता है कि मुझे एक बार इस पृथ्वीलोक में आने दो। फिर अपने शुभकर्मों के द्वारा उस परमात्मा तत्व को आवश्य प्राप्त कर लूंगा।

वहां उस शिशु रूपी आत्मा की अत्यंत दयनीय स्थिति होती है। वह जब तक गर्भ में है वह लगातार एक-एक पल प्रभु को याद करता रहता है। किंतु जैसे ही वह इस मायाबद्ध संसार में आता है वह क्रंदन करता है और कहां-कहां कहकर रोने लगता है अर्थात् वह कहना चाहता है कि आप कहां ? और मैं कहां ? उसे कुछ समझ नहीं आ रहा होता है एक तरफ वह जीवात्मा रो रहा होता है तो दूसरे तरफ दुनिया वाले जो मोह माया में ग्रसित हो चुके हैं स्वयं का लक्ष्य भूल बैठे हैं और वह खुशियां मना रहे होते हैं। धीरे-धीरे वह देहधारी आत्मा माया में वशीभूत होकर अपना वास्तविक ज्ञान से विमुख हो जाता है और वह मोह माया में फसता चला जाता है। परमात्मा से संबंध को भूलकर यहां असत्य मायाबद्ध संसार में अपना संबंध बना लेता है। सत्य को छोड़कर असत्य के पीछे भागने लगता है तो असत्य का परिणाम असत्य ही होता है, क्योंकि सत्य तो केवल वही परमात्मा है। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' (अद्वैत वेदांत) यदि असत्य वस्तु के पीछे भागेंगे तो परिणाम भी असत्य होगा। माया के पीछे यदि भागेंगे तो परिणाम भी माया से ही ग्रस्त हो जाएगा।

माया क्या है ?

विष्णु की माया जो अज्ञानस्वरूपए भावरूपए अविद्यारूपी और त्रिगुणात्मक है जो सत् एवं असत्य से अनिर्वचनीय है। इस माया में सारा जगत् सम्मोहित है

विष्णुर्माया भगवते यया सम्मोहितं जगत्

मंगलाचरण शिवराजविजयम्द्ध

अज्ञानं तु सदसद्भ्यामनिर्वचनीयं त्रिगुणात्मकं

ज्ञानविरोधि भावरूपं यत्किंचिदिति (वेदांतसार)

आधुनिक समाज मे अज्ञान से आच्छादित अनेकों घटनाएं देखनें को मिलती है। जैसे एक उदाहरण लेते हैं कि एक प्रेमी प्रेमिका हैं। वे आपस में परिणय संबंध स्थापित करते हैं, किंतु कुछ समय पश्चात उनमें दूरियां होने लगती हैं। इसका परिणामवश वह अपना जीवन तबाह (आत्महत्या) कर लेते हैं। जिस शरीर को पाने के लिए वह जीवात्मा ने गर्भ तक कितनी विनती की ? कितना कष्ट सहा ? परन्तु इस माया में फंसकर स्वयं का जीवन समाप्त कर लिया। परीक्षा में सफल न होने के भी आत्महत्या कर लेते हैं तो इन तरह तरह की घटनाओं के पीछे कारण कहीं न कहीं दर्शन और अध्यात्म की कमी है। जिस कारण वे अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य को नहीं पहचान पा रहे हैं। अतः लोगों के बीच दर्शन के विचारों को प्रसार करना चाहिए क्योंकि दर्शन का काम यही है कि मनुष्य जीवन को मजबूत सुव्यवस्थित, सत्यपरिचित, अज्ञानरहित, मुमुक्षु (मोक्ष में इच्छा) आदि बनाना।

जो इस संसार में आकर अपना उचित कर्म करते हैं इस माया में न फंसते हुए वास्तविकता से परिचित होकर मोक्ष के मार्ग में अग्रसर होते हैं। उसी जीवात्मा का जीवन सफल एवं मानव शरीर सार्थक साबित

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 August 2024
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

होता है। दर्शन हमें हर समय एक समान रहना सिखाता है। द्वंदसहनं तप: (योगसूत्र)। भगवद्गीता में श्री कृष्ण कहते हैं :

सुखदु:खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।

ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्यस्यसि।। गीता 2/38

माया की भी आवश्यकता है, किंतु माया में रहकर भी माया से प्रभावित अथवा ग्रस्त ना होकर अपने वास्तविक लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहिए।

निष्कर्ष

अपने जीवन को सार्थक बनाएं मोह माया में न फंसे, बल्कि अपना कर्म करें। अपने जीवन की वास्तविकता को पहचाने और अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर रहें।

संदर्भ ग्रंथ

- *श्लोक 22, अध्याय 2, श्रीमद्भगवद्गीता*
- *श्लोक 20, अध्याय 2, श्रीमद्भगवद्गीता*
- *अद्वैत वेदांत, शंकराचार्य*
- *मंगलाचरण, शिवराजविजय, अम्बिका दत्त व्यास*
- *वेदांतसार, आचार्य सदानन्द*
- *साधनपाद, योगसूत्र, पतंजलि*
- *श्लोक 38, अध्याय 2 श्रीमद्भगवद्गीत*